# "कार्रवाई करनेवाला मनुष्य": 'फैंड्री' मराठी क्षेत्रीय सिनेमा

- शायनी एस्

**शोध सार :**

हमारे समकालीन परिवेश में अस्मितमूलक विमर्श अर्थात संवाद का दायरा काफी व्यापक है। इस संवाद में साहित्य के साथ क्षेत्रीय सिनेमा महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है। विशेषतः मराठी सिनेमा में विभिन्न अस्मिताएं अपने क्रिटिकल यथार्थ के साथ प्रस्तुत की गई हैं जैसे; जोगवा, नटरंग, न्यूड, कोर्ट, सैराट और फैंड्री आदि। क्षेत्रीय सिनेमा कथानक, पात्र और प्रस्तुति में सूक्ष्म लेंसेस का इस्तेमाल करता है। जो अस्मिताएं एक व्यवस्था के तहत परिधि पर रखी गई उन्हें केंद्र में लाने का काम क्षेत्रीय सिनेमा करता आया है। दूसरे अर्थ में, यह हमारी कन्डिशनिंग को परखने का समय और माध्यम भी है कि जिन घटकों के लिए हम संवेदनहीनता के चरम पर रहें उन्हें इंसान समझें, महज इंसान बनकर।

**बीज शब्द:** मराठी, क्षेत्रीय सिनेमा, फैंड्री, नागराज मंजुले, जाति-व्यवस्था, प्रेम, संवेदना।

**क्षेत्रीय सिनेमा:**

क्षेत्रीय सिनेमा किसी विशेष क्षेत्र में अपने एंटी नायक की खोज करता है। क्षेत्रीय सिनेमा में किसी विशेष क्षेत्र की परंपराएं, सामाजिक व्यवस्था, उस क्षेत्र का इतिहास, राजनीतिक चेतना आदि से निर्मित कंडीशनिंग के तहत सालों-साल चलने वाले व्यवहार और वैचारिकी का विखंडन किया जाता है। जैसे; फैंड्री सिनेमा में जब्या को परंपरागत रूप से एक ही काम के लिए योग्य मानना। क्षेत्रीय सिनेमा मुख्यधारा सिनेमा के विरोधाभास में मुख्यधारा से ही पीड़ित, पददलित इंसानों की या दमित अस्मिताओं की जिंदगी को केंद्र में रखता है। हमें क्षेत्रीय सिनेमा ने एक आईना यह भी दिखाया है कि, जिस 'क्षेत्रीयता' के कारण जांबवंत पात्र को समग्र देश पर आरोपित नहीं किया जा सकता तो मुख्यधारा के कपूर को क्यों। और परिवार की कथा को भी नहीं। क्योंकि ऐसा करते वक्त भी जब्या का अस्तित्व इसी समाज में था ही। विशेषतः भारतीय समाज में जो पाश्चात्य देशों की तरह एक ही ग्रंथ, एक ही भाषा जैसा न होकर अनगिनत धाराओं का समूह हैं। इसलिए भी एक देश के तौर पर जब बाहर के देशों में किसी पुरस्कार के लिए सिनेमा भेजने का सवाल आता है तब 'क्षेत्रीयता' का मुद्दा महत्वपूर्ण हो जाता है। अभी हाल ही में प्रदर्शित 'ऑल वी इमेजिन ऐज ए लाइट' (पायल कपाड़िया) के संदर्भ में यही चर्चा शुरू थी। देखा जाए तो

विचारधारा के स्तर पर इसका हल हो सकता है परंतु 'क्षेत्रीयता' सिनेमा के संदर्भ में ज्ञानात्मक परंपरा को बल ही देती है।

इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि, क्षेत्रीय सिनेमा सिनेजगत में 'प्रतिनिधित्व' की कमी को पूरा करता है। साथ ही यह दृष्टिकोण के बदलाव की जरूरत को भी सामने रखता है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर और फिर सूक्ष्मतर तक इसकी खोज है। यह विशेष ध्यान देने वाली बात है कि भारतीय सिनेमा की शुरुआत दादासाहेब फालके निर्देशित 'राजा हरिश्चंद्र' मराठी क्षेत्रीय सिनेमा से हुई है।

"यह भारत का सबसे पहला सिनेमा उद्योग है। पहली मराठी फिल्म 'श्री पुण्डलिक' दादासाहेब तोरणे के द्वारा 1912 में बनाई गई। 'राजा हरिश्चंद्र' जो कि भारत की पहली फिल्म है वह भी मराठी भाषा में ही थी और 1913 में बनी। वहीं पहली मराठी बोलती फिल्म थी 'अयोध्येचा राजा' जो 1932 में बनी। 1937 में प्रभात फिल्म कंपनी के द्वारा बनी फिल्म 'संत तुकाराम' को वेनिस फिल्म फेस्टिवल में बेस्ट फिल्म का अवॉर्ड मिला ।"[1]

परंतु आजादी के बाद बॉलीवुड की फिल्में अपना वर्चस्व बनाती है। हमारा ध्यान न के बराबर गया कि जब बॉलीवुड के हीरो ठुमके लगा रहे थे तब कचरू माने के पिता कौन - सी व्यवस्था से सामना कर रहे थे। वैचारिक आंदोलनों का उभार और टेक्नोलॉजी के विकास के कारण यह संभव हो पाया कि सामान्य इंसान अपनी कथा दृश्य - श्रव्य माध्यम से कह सकें और अपनी भाषा में कह सकें। ओटीटी प्लेटफार्म और उससे पहले भी यूट्यूब के कारण 'क्षेत्रीयता' को एक ऐसी जमीन मिल गई जिस पर वह अपने अस्तित्व को रोप सका। यह जमीन इतनी व्यापक है कि इसने भौगोलिक सीमाएं तोड़ दी हैं। आज क्षेत्रीय सिनेमा के वैश्विक दर्शक हैं। कोर्ट, सैराट, बाहुबली, दृश्यम, बैंगलोर डेज, थंगलान इत्यादि जैसे सिनेमा की कहानी, अभिनय और सामाजिक विषयों की कॉम्पलेक्सिटी को विचारधारात्मक स्तर पर व्यवस्थित परखने और प्रस्तुतिकरण की क्षमता क्षेत्रीय सिनेमा रखता है। एक और विशेषता यहां लक्षित की जा सकती है कि क्षेत्रीय सिनेमा ने भाषाई वर्चस्व, आग्रह को भी तोड़ा है और भाषाई बैरियर को भी। भाषा के बैरियर तोड़ने में मुख्य भूमिका अनुवाद और सब टाइटल ने निभाई। बॉलीवुड के एक तय पैटर्न से दूर क्षेत्रीय सिनेमा लोक-गीत, संगीत, वाद्य की कद्र करता है।

**दलित :**

दलित शब्द का अर्थ पीड़ित, शोषित और 'जिनका हक छीना गया हो' होता है। "दलित, एक ऐसा शब्द है जिसका इस्तेमाल हिन्दू जाति समाज में ऐतिहासिक रूप से हाशिये पर पड़े सामाजिक समूहों की एक विस्तृत शृंखला के किसी भी सदस्य को संदर्भित करने के लिए किया जाता है। आधिकारिक पदनाम 'अनुसूचित जाति' अब भारत में इन समूहों के लोगों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला सबसे आम शब्द है, हालांकि अनुसूचित जातियों के सदस्य अक्सर दलित शब्द को प्राथमिकता देते हैं। 1949 में भारत और 1953 में पाकिस्तान द्वारा अपनाए गए संविधानों में 'अछूत' शब्द का उपयोग और उससे जुड़ी सामाजिक अक्षमताओं को अवैध घोषित किया गया था ।"[2] हालांकि सिनेमा में कैकाड़ी जाति के लिए अछूतता के प्रसंग दिखाए गए हैं। इसलिए इस पद को प्रस्तुत पत्र में निषेधात्मक ही रखा गया या माना गया है ।

**फैंड्री सिनेमा:**

'फैंड्री' शब्द का अर्थ होता है - 'सूअर'। यह वडारी भाषा का शब्द है। फैंड्री सिनेमा सैराट से पहले प्रदर्शित हुआ और दोनों के दिग्दर्शक एक है - नागराज मंजुले। दोनों सिनेमाओं में जाति-व्यवस्था अपने यथार्थ रूप में मौजूद हैं। उसकी दाहकता हम तक पहुँचती है। बावजूद इसके, दोनों का स्वरूप अलग-अलग हैं। क्योंकि सिनेमा में नायक की जातीय स्थिति में बदलाव आता है। विशेषतः प्रेम के विषय में, फँटसी में भी बदलाव आता है।

जांबवंत (जब्या) के लिए प्रेम की परिभाषा में सामाजिक यथार्थ (मतलब जाति-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था) सीधे हस्तक्षेप करता है। और इसकी इन्टेन्सिटी इतनी है कि वह प्रेम की फँटसीज् में लहरा नहीं सकता। परश्या की तरह कुएं में कूदना तो दूर, जब्या की बड़ी बहन को पानी का लोटा भी दूर से रखा जाता है। महाराष्ट्र के नक्शे में मुंबई, पूना जैसे महानगर छोड़कर अर्थात मुख्यधारा से दूर का यह जीवन वास्तव आज भी है। बस पैटर्न बदल दिए गए हैं। यहाँ उसकी जातीय और सामाजिक स्थिति ही उसे गन्ने के खेतों और कुएं, नदी में कूदने की अनुमति नहीं दे सकती। यह बेवजह नहीं कि, वह शालू से बात नहीं कर पाता पर पत्र लिखता है। यह पत्र उस वर्ग की व्यवस्थित मानसिकता अभिव्यक्त करता है जो लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए तड़पते हैं, उन्होंने उसकी कीमत चुकाई है सभी अंगों से।

सिनेमा की शुरुआत जब्या के काली चिमणी (गौरेय्या) पकड़ने के प्रयास से होती है। उसका यह प्रयास निरर्थक है यह कहना कितना सार्थक है? फैन्टसी के बजाय वह जादू-विद्या अपनाता है और उसका स्त्रोत है - चंक्या (चंकेश्वर साठे)। जब्या घरवालों के खुदाई के काम और सुअर

पकड़ने के काम में हाथ बँटाता है। जब्या के चरित्र का यह विकसनशील पक्ष है कि वह इन जाति आधारित कामों का अस्वीकार करता रहता है।

खुदाई के काम से वापस आते वक्त उसे शालू दिखती है और वह छिप जाता है। जाति छिपाने (जो उसके कामों से स्पष्ट हो जाती है) का प्रयास ही उसे इन जातिगत कामों को छोड़कर पेप्सी बेचने अन्य गांवों तक पहुंचाता है। इन जातिगत कामों को देखकर शालू के मन में उसके प्रति घृणा उत्पन्न होगी जिसे प्रेम में बर्दाश्त करना मुश्किल है। नागराज मंजुले जी सिनेमा बनाने की पद्धति (वैचारिकी और कथानक, पात्र और उनका चयन, लोकैशन आदि) बदल रहे हैं और यह बदलाव मानवीय मूल्यों की तरफ बढ़नेवाला है। सिर्फ जाति छिपाने से क्या होगा? इस समाज में एक अमानवीय तत्व ये भी पिरोया गया है कि जब्या भले ही जातिगत काम छोड़ दे, जाति या वर्ण कैसे छोड़ पाएगा? इसके लिए उसका एक बालिश व्यवहार है कि वह आईने में अपना चेहरा देखता है और पाउडर लगाता है। शालू के वर्ग का चिंतन पक्ष इतना सुगठित है कि उन्हें और उसे जब्या की त्वचा से स्थिति का अंदाजा हो ही जाता है। रही-सही कसर भाषा पूरी करेगी ही।

जब्या अपने सहपाठी कुलकर्णी के घर गृहपाठ पूछने जाता है तब वह अपनी जाति के कारण बाहर खड़ा रहता है। उसकी माँ उसे बुलाते वक्त जब्या की जाति का (कैकाड़ी) का उल्लेख करती है -

“जब्या: काकू, वेदान्त आहे का हो?

वेदान्त ची आई: वेदान्त, कैकाडयाचं पोरगं आलय बघ ।”3

अर्थ:

जब्या: काकू, वेदान्त है क्या?

वेदान्त की माँ: वेदान्त, कैकाड़ी का लड़का आया है, देख।

क्या ये कंडिशनिंग नहीं है? जबकि जब्या द्वारा इस्तेमाल किया गया सम्बोधन आदरयुक्त है - ‘काकू’। और घर ही क्यों यहाँ पाठशाला तक भेदाभेद और अछूतता से मुक्त नहीं है। और न ही विश्वविद्यालय। इसी सीन में जाति-व्यवस्था का एक घिनौना चित्र दिखता है - जब्या अपनी जाति के कारण बाहर खड़ा है ही परंतु वेदान्त जो उसका सहपाठी है, उसकी दुनिया और जब्या की दुनिया में कितना अंतर है! यही अंतर अगले सीन से स्पष्ट है जिसमें पढ़ाई के लिए भी वह तेल/ रॉकेल का अधिक इस्तेमाल नहीं कर सकता।

रात का समय है। झोपड़ी जो कि मिट्टी और पत्थरों से बनी है, उसमें लालटेन का लाल प्रकाश क्रांति और मुक्ति की चेतना को जलाए रखता है। यहीं पर विंसेंट वैन गॉग की तस्वीर 'द पोटॅटो इटर्स' का भास प्रकाशवृत्त के परिप्रेक्ष्य में होता है। पेंटिंग के चार लोग, जो श्रमिक हैं, दिनभर की हाड़तोड़ मेहनत से चूर रात का खाना खाने बैठे हैं। एक लैम्प की रोशनी (चित्रकार की उपलब्धि) उनकी वर्गीय स्थिति को बताने के लिए काफी है। सभी चेहरे खाने पर लगे हैं, कोई बोल नहीं रहा है। चेहरे की असमय झुर्रियां औद्योगिकीकरण का पिरियड बता सकती है। यहाँ उबले आलू 'कफन' कहानी (प्रेमचंद) की याद दिलाते है। हाड़-मांस के लोग पर रक्त-रहित। पेंटिंग की रंग-संगति में एक प्रकार से शोषितों की चेतना घुली हुई है उसी प्रकार जब्या का यह प्रसंग है। लाल प्रकाश और मिट्टी का रंग जो लालटेन के कारण फैला है, दलित जातिगत चेतना को फैला रहा है।

पढ़ाई की भूख जब्या में दिखती है। दो प्रकार के प्रकाशवृत्त - एक नैसर्गिक और दूसरा 'मॅन मेड'। नैसर्गिक प्रकाशवृत्त में जब्या मजदूरी करने के लिए अभिशप्त है तब भी उसके लिए दीया भी मयस्सर नहीं। क्लास में पढ़ाने के लिए तो मास्तर संत चोखा मेला का अभंग पढ़ा रहे है - "ऊस डोंगा परि रस नोहे डोंगा/ काय भुल लासी वरीलिया रंगा"[4] (मनुष्य का श्रेष्ठत्व उसके भाव और कर्मों से तय होता है। गन्ना टेढ़ा हो सकता है, उसका रस नहीं।) हकीकत क्या है? हमें दो प्रसंगों में दिखती हैं ।

प्रथम है - पाठशाला के मैदान में सूअर आता है और उसकी टकराहट से लड़की गिर पड़ती है। शालू भी उसी ग्रुप में है और वह अपनी एक अन्य सहेली को उसके पास जाने से रोकती है जो उसे मदद करने आगे बढ़ रही होती है। क्योंकि उसे सूअर ने छुआ है और अब वह अछूत है। ये वही शालू है जो उपर्युक्त अभंग पढ़ते वक्त उसके 'भावार्थ' में सहमत है। शुद्धिकरण हेतु घर जाने के लिए उसे अपने शिक्षकों की अनुमति जरूरी है। इसके लिए वह अपनी सहेली को लेकर स्टाफ रूम में जाती है। यहाँ 'शिक्षक' जिन्हें तार्किक, वैचारिक समाज बनाना है, जिन्हें विद्यार्थियों में 'व्यवहार परिवर्तन' लाना है, वे ही कन्डिशनिंग से मुक्त नहीं है। शालू उसे 'शुद्धि' के लिए घर लेकर जाती है और गौमूत्र छिड़कने में शामिल होती है।

द्वितीय प्रसंग - सिनेमा के अंत में है। उपर्युक्त पहले प्रसंग की व्याख्या अगले ही सीन से की गई है। जब्या और पिर्या (पिराजी: सहपाठी और दोस्त) पेड़ पर बैठे हैं। जब्या वहाँ के घोंसले में झांक कर देखना चाहता है कि वह सफेद गौरेय्या का है या काली गौरेय्या का? 'वैटिंग फॉर गोड़ोट' का दृश्य यहाँ चमक जाता है। रास्ता पार करनेवाली एक बुढ़िया उसे फटकारती हुई कहती

है - "चिड़ियाँ ब्राह्मण होती है और उसे छूने पर बाकी की चिड़ियाँ उसे अपने में शामिल नहीं करती। नोच-नोच कर उसकी जान ले लेती है ।"5 नोच-नोच कर जान लेने अर्थात बाह्य जाति में विवाह करने पर 'ऑनर किलिंग' (इस शब्द को 'अछूत' शब्द की तर्ज पर बर्खास्त कर देना चाहिए) की और कितनी घटनाएं देखने पर हम 'मनुष्य समाज' का टैग अपने पर लगा सकते है?

'लव के चक्कर में' पोस्टर जब्या के लिए कविता है। जो काम जब्या के पिता 'कचरु माने' करते हैं, जब्या उसे स्पष्टता से नकारता है। सत्ताएं यहाँ कई संदर्भों में उजागर हुई हैं। शालू का अपनी सहपाठी के लिए कहना "उसे छूना मत उसे सूअर ने छूआ है ।"[6] और गाँव के पाटील का कचरु जी की अनुपस्थिति में जब्या को सूअर पकड़ने के लिए मजबूर करना, यह अपमान, जातिगत दंश कुएं का रूप ले लेते हैं, जिसमें वो डुबकियाँ खाता हैं। सदियों का यह संताप/ फ्रस्टेशन है जो उसके अवचेतन का हिस्सा बन चुका है। मगर यही फ्रस्टेशन एक अन्य दृश्य में तिरोहित होकर सकरात्मकता से प्रस्तुत होता है।

कुछ पल के लिए ही सही वह बाजारवाद का हिस्सा बनता है। भोक्ता बनने की शर्तें पश्चिमी सभ्यता से तय होती है। और इसका निर्णय केवल फैशन-परस्ती से नहीं होता। पूर्वीय देशों के रख-रखाव भी उनके (पाश्चात्यों के) आदर्शों को आदर्श स्थापित करने में विभ्रमित किये जाते है। कचरु जी की चारित्रिक विशेषता में वह निम्न वर्गीय चरित्र की विशेषता लक्षित होती है, जो होरी (प्रेमचंद कृत गोदान उपन्यास का पात्र) में है। उसने होरी की चालाकी अर्जित की है कि किससे, कब पैसे निकलवाने हैं? साथ ही गोर्की के पात्रों जैसा फ्रस्टेशन भी। जो शराब पीकर गालियां देने से व्यक्त होता है। पर यहाँ गोर्की के श्रमिकों से ज्यादा और पीढ़ीगत, जातीय, वर्गीय अपमान और अवहेलना का दंश है। यह अवहेलना उक्त सीन में सवर्ण व्यक्ति द्वारा उसे चिढ़ाने के माध्यम से दर्शायी गई है। निचली जाति (मानी जाने वाली) का होने के कारण उसे चिढ़ाते व्यक्त 'पाँच रुपए की शराब' से उसका मूल्य आँका जाता है।

गाँव की जत्रा शुरू हुई है और जब्या मन में प्रेम पत्र पढ़ रहा है। चंक्या अनेकों बार उसे उस कीचड़ से निकालने का प्रयत्न करता है। वह उसे महाराष्ट्र का पारंपारिक वाद्य 'हलगी' बजाने देता है पर अंत में वह अपने सिर पर गैस का लैंप ढोता है। जातिवादी उसे सप्रयत्न अपने से बाहर करते ही हैं पर अंत में वह थका-हारा जत्रा में रौशनी लूटा रहा है। जब्या के हिस्से का चिरागाँ डेलीबरेटली छीना गया है। पत्र में उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट है। वह उसके सामने पर्याय रखता है - "...शालू, अगर मैं तुम्हें नापसंद हूँ तो तुम चिठ्ठी/पत्र फाड़कर फेक दो। मैं समझ जाऊँगा। पर घरवालों को मत बताना। दूसरे किसी व्यक्ति को यह खत दिखाकर मेरी हँसी मत उड़ाना...।"[7] और

पीछे दो चेहरे हँसते हैं... गुब्बारा फोड़ते हुए। जो कचरू अक्षर तक पढ़ नहीं पाता और जब्या सवर्ण लड़की के लिए प्रेमपत्र लिखता है, बावजूद इन दो समयों के जातिवादी चेहरों की उपस्थिति वहाँ है ही। ये दो चेहरे जातिवाद का प्रतिनिधित्व तब भी करते दिख रहे है जब अंत में फैंड्री को पकड़ने का प्रयास है ।

एकतर्फा प्रेम से लड़कियों की होने वाली सभी प्रकार की हत्याएँ, आम घटनाएँ हैं, की तरह 'प्रतिक्रिया' देनेवाले समाज पर यह पत्र न प्रहार है न तमाचा। ऐसे विषय अब सिर्फ वास्तविक संवेदनशील वर्ग तक सीमित हैं। ऐसे में यह पत्र जब्या के वर्ग की चेतना में अस्तित्ववान लोकतंत्र की एक व्याख्या भी है। और शिक्षित व्यवहार भी। उसे काली गौरेय्या मिल गई है और वह उसे जलाकर उसकी राख शालू पर उंधेलता है। जादू-विद्या नुसार उसका असर शालू पर होता है और वो सभी भेद भुलाकर जब्या से प्रेम करने लगती है। यह सपना एक मूक अभिव्यक्ति है, जहाँ शब्द आने पर भेदाभेद शुरू होंगे, वो यथार्थ अभिव्यक्त होगा जो पत्र में है। सपना खत्म होता है सूअर पकड़ने की सुबह में। एक क्रिटिकल यथार्थ! जिससे जूझना इसलिए भयावह है क्योंकि यह जातिगत काम संपूर्ण गाँव के सामने करना है। जब्या का यथार्थ इस समाज का समय, यथार्थ, कंडिशनिंग और व्यवस्था सब कुछ है। उसका सपना इन सभी को लाँघ कर भी सपना ही है, जिसके लिए उसके जादू-विद्या का सहारा लेना पड़ता है ।

सिनेमा की शुरुआत से शुरू हुआ जाति छिपाने का प्रयास (खुदाई का काम, झाप/टोकरी बेचना, गैस का लैंप, सूअर पकड़ना) अब सफल नहीं होगा क्योंकि पाठशाला को छुट्टी नहीं है। इस काम को रविवार के दिन करने की उसकी जिद को कोई नहीं पूछेगा क्योंकि पैसे लिए जा चुके है। जिसका उपयोग बहन की शादी में होना है। घर के चारों लोग जी-जान से सूअर के पीछे पड़े हैं। सामंतवादी, जातिवादी चेहरे उन पर हँसते रहते हैं। जातिगत विशेषणों से उनका मजाक उड़ाते हैं। और इसमें शालू ही नहीं (पिंच्या छोड़कर) संपूर्ण पाठशाला शामिल है। फिर भी वह उन दीवारों के पीछे छीपने का प्रयास करता है। पत्थर की दीवारें ऐतिहासिकता में जाति और वर्णव्यवस्थाओं की सूचक हैं। जन्म भर कचरू यह काम से परेशान, उसका संताप जब्या पर निकल आता है। जो पत्थर सूअर को मारने हैं वो जब्या पर चलाए जाते हैं। जातिवादी लोग यहीं पर नहीं रुकते। सूअर को पाठशाला के सामने से ढोया जा रहा है। पाठशाला की दीवारों पर डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर, सावित्रिबाई फुले, गाडगे बाबा की छायाचित्र भी मौजुद हैं। पृष्ठभूमि भले ही समता की क्रांति और चेतना को प्रस्तुत करती हो, यथार्थ सामने है। उन्हीं दो चेहरों से जब्या की बड़ी बहन को जातिगत गालियाँ देकर उकसाने की कोशिश की जाती है। फिर एक पत्थर जब्या द्वारा उछाला

जाता है और यही फैंड्री सिनेमा का अंत है। वह पत्थर व्यवस्था पर उछाला गया है। इसके बाद हलगी बजती है। मानो वह व्यवस्थाओं के अंत की घोषणा है। उसका उत्सव है।

'पत्थर फेंकना' केवल मुहावरा नहीं है। यह गढ़ और मठों का प्रतिपक्ष भी है। फैंड्री को केवल 'विद्रोही सिनेमा' कहकर उससे मुक्त होने का सस्ता ढूँढना एक षडयंत्र है। वैचारिक षडयंत्र। स्वानुभूति और सहानुभूति के संदर्भ में, अगर आप पहले पक्ष में है, तो सिनेमा से आपके दु: खों यातनाओं पीड़ाओं का विरेचन होगा ही। पर दूसरे पक्ष में अधिकांश रूप से हाथ ऊपर किए जाते हैं - आज कहाँ जाति व्यवस्था है? इसके बाद सहानुभूति के कार्यक्रम से अधिकांश अपने आप को प्रस्तुत अमानवीय व्यवस्था से धीरे से अलगाते हैं। यही अवधारणा की खासियत है। इस बीच में सवाल ये है कि कितने प्रतिशत लोग (दोनों पक्षों के) बी. बुर्सोव जी की भाषा में "कार्रवाई करने वाले मनुष्य"[8] बनते हैं? पत्थर फेंकना फैंड्री का दंभ नहीं जवाब है।

**संदर्भ सूची:**


1. प्रभात कुमार, सितंबर 2020, भारत में क्षेत्रीय सिनेमा, Journal of Emerging Technologies and Innovative Research JETIR Volume 7 Issue 9 (www.jetir.org ISSN - 2349-5162)
2. http://www.britannica.com/topic/Dalit
3. फैंड्री सिनेमा ।
4. फैंड्री सिनेमा।
5. फैंड्री सिनेमा ।
6. फैंड्री सिनेमा ।
7. फैंड्री सिनेमा ।
8. मैक्सिम गोर्की, संस्करण 2010, माँ, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ ।


**शायनी एस्**, शोधार्थी,
सवित्रीबाई फुले पुणे यूनिवर्सिटी
ईमेल- shayanisinnarkar07@gmail.com
फोन नं - 9359956236